International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 14 Issue 5, September-October, 2026

राजस्थानी लोक साहित्य में जल संरक्षण: परंपरा, चेतना एवं समकालीन प्रासंगिकता

महेश कुमार मीणा

शोधार्थी, श्री जगदीश प्रसाद झाबरमल टिबरेवाला यूनिवर्सिटी, झुंझुनूं

DOI: https://doi.org/10.55948/IJERED.2026.0913

सार (Abstract)

राजस्थान भारत का सबसे बड़ा किंतु सर्वाधिक जल-विरल राज्य है। थार मरुस्थल की कठोर भौगोलिक और जलवायवीय परिस्थितियों ने यहाँ के समाज को शताब्दियों से जल के प्रति एक विशिष्ट सांस्कृतिक चेतना विकसित करने हेतु प्रेरित किया है। यह चेतना केवल कुंड, टांका, बावड़ी, जोहड़ और खड़ीन जैसी स्थापत्य संरचनाओं तक सीमित नहीं रही, अपितु लोकगीतों, लोककथाओं, लोकदेवताओं की गाथाओं तथा लोकोक्तियों में भी गहराई से अंतर्निहित रही है। प्रस्तुत शोध लेख राजस्थानी लोक साहित्य के विविध रूपों—विशेषतः पणिहारी और इंडोणी जैसे लोकगीत, गोगाजी-तेजाजी-रामदेवजी जैसे लोकदेवताओं से जुड़ी गाथाएँ, जल-उत्पत्ति संबंधी मिथक तथा पारंपरिक कहावतों—के विश्लेषण के माध्यम से यह प्रतिपादित करने का प्रयास करता है कि लोक साहित्य वस्तुतः मरुप्रदेश के संचित पारिस्थितिक ज्ञान का एक जीवंत एवं गतिशील कोष है। लेख के अंतिम भाग में इस पारंपरिक लोक-चेतना की समकालीन जल संकट के समाधान में प्रासंगिकता को भी रेखांकित किया गया है।

कुंजी शब्द: राजस्थानी लोक साहित्य, जल संरक्षण, पणिहारी गीत, बावड़ी-जोहड़, खड़ीन, लोकदेवता, मरुस्थलीय जल-संस्कृति

प्रस्तावना

भारतीय उपमहाद्वीप के पश्चिमोत्तर भाग में विस्तृत राजस्थान का बड़ा भू-भाग थार मरुस्थल के अंतर्गत आता है, जहाँ वार्षिक वर्षा का औसत अनेक क्षेत्रों में मात्र सौ से चार सौ मिलीमीटर के मध्य ही सिमटा रहता है। ऐसी विषम परिस्थितियों में जल केवल एक प्राकृतिक संसाधन न रहकर जीवन, अस्तित्व और गरिमा का पर्याय बन गया। यही कारण है कि राजस्थान के लोकजीवन ने सदियों की अनुभवजन्य समझ से जल-संचयन की ऐसी प्रविधियाँ विकसित कीं, जिन्हें आज विश्व भर में सतत जल प्रबंधन के आदर्श उदाहरण के रूप में देखा जाता है। किंतु यह ज्ञान मात्र अभियांत्रिकी संरचनाओं—कुंड, टांका, बावड़ी अथवा खड़ीन—तक सीमित नहीं रहा; इसने लोकगीत, लोककथा, लोकोक्ति और लोकदेवताओं की गाथाओं जैसे मौखिक साहित्य-रूपों में भी अपनी अमिट छाप छोड़ी। लोक साहित्य किसी भी समाज का वह सामूहिक स्मृति-कोष होता है, जिसमें पीढ़ी-दर-पीढ़ी अनुभव, नैतिकता, विश्वास और व्यावहारिक ज्ञान संचित होते चलते हैं। राजस्थान के संदर्भ में यह स्मृति-कोष विशेष रूप से जल के प्रति श्रद्धा, मितव्ययिता और संरक्षण की चेतना से अनुप्राणित है।

शोध का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. राजस्थानी लोक साहित्य के विभिन्न रूपों–लोकगीत, लोककथा, लोकोक्ति एवं लोकदेवता-गाथा–में निहित जल संरक्षण संबंधी चेतना का विश्लेषण करना।
2. पारंपरिक जल संरचनाओं और लोक साहित्य के अंतर्संबंधों की पड़ताल करना, अर्थात् यह देखना कि भौतिक संरचनाएँ मौखिक परंपरा में किस प्रकार जीवंत रहीं।
3. इस लोक-चेतना में निहित पारिस्थितिक ज्ञान की समकालीन जल संकट के परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता को रेखांकित करना।

शोध प्रविधि

यह अध्ययन गुणात्मक एवं वर्णनात्मक-विश्लेषणात्मक प्रविधि पर आधारित है। इसके लिए द्वितीयक स्रोतों–प्रकाशित लोक साहित्य संकलन, लोक संस्कृति संबंधी शोध-सामग्री, जल-इतिहास पर केंद्रित प्रामाणिक लेखन तथा क्षेत्रीय अध्ययन-सामग्री–का गहन अवलोकन एवं विश्लेषण किया गया है।

राजस्थान: मरुभूमि की सांस्कृतिक चेतना और जल

भारतीय दर्शन में जल को सृष्टि के पंच महाभूतों में एक माना गया है, किंतु राजस्थान के मरुस्थलीय अंचल में इसका महत्व अन्यत्र से कहीं अधिक प्रगाढ़ है। यहाँ पानी को घृत अर्थात् घी से भी अधिक बहुमूल्य माना गया, जैसा कि पश्चिमी राजस्थान की एक प्रचलित लोकोक्ति में परिलक्षित होता है– "घी ढूले म्हारो की नी जासी, पानी ढूले म्हारो जी बे?" अर्थात् यदि घी गिर जाए तो मेरा क्या जाता है, किंतु यदि पानी गिर जाए तो मानो मेरी जान ही निकल जाती है। इस एक पंक्ति में मरुवासियों की संपूर्ण जल-दृष्टि संघनित हो जाती है। यही चेतना आगे चलकर लोक साहित्य के हर रूप में–चाहे वह गीत हो, कथा हो अथवा कहावत–किसी-न-किसी रूप में अभिव्यक्त होती रही।

पारंपरिक जल संरचनाएं और लोक स्मृति

राजस्थान के लोकजीवन ने अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप बहुविध जल संरचनाओं का विकास किया, जो न केवल तकनीकी दृष्टि से उन्नत थीं, अपितु सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग भी बन गईं।

कुंड, कुंडी और टांका

मरुस्थल के रेतीले ग्रामीण अंचलों में वर्षाजल के संचयन हेतु कुंड अथवा कुंडी का निर्माण किया जाता रहा है। इसी क्रम में टांका–भूमिगत, गुंबदाकार जलाशय, जो प्रायः चालीस से पचास फीट गहरा होता है–शेखावाटी अंचल (सीकर, झुंझुनूं, चूरू) में लगभग हर घर और खेत में पारंपरिक रूप से निर्मित मिलता है। चूरू के ग्रामीण आज भी वर्षा की प्रत्येक बूँद को शुद्धता के साथ संचित करने हेतु वर्षाकाल में अपनी छतों की विशेष सफाई करते हैं। यह प्रथा स्वयं में एक प्रकार का अलिखित लोकाचार है, जो पीढ़ियों से मौखिक निर्देशन के रूप में हस्तांतरित होता रहा है।

बावड़ी और झालरा

पश्चिमी राजस्थान में सीढ़ीदार कुओं अर्थात् बावड़ियों के निर्माण की परंपरा को शक जाति द्वारा ईसा की प्रथम शताब्दी के आसपास लाया गया माना जाता है। कालांतर में स्थापत्य-प्रेमी राजाओं, रानियों तथा सेठ-साहूकारों ने अपने पूर्वजों की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के उद्देश्य से प्रदेश भर

में अत्यंत कलात्मक बावड़ियों, झालरों और कुंडों का निर्माण करवाया। इन संरचनाओं के निर्माताओं की कथाएँ आज भी स्थानीय जनश्रुतियों में जीवित हैं, जो बावड़ियों को मात्र स्थापत्य कृति न रहकर सामूहिक स्मृति का स्थल बना देती हैं।

जोहड़, नाड़ी और टोबा

जोहड़–मिट्टी के छोटे बाँध जो वर्षाजल को रोककर भूजल स्तर को पुनर्भरित करते हैं–राजस्थान की सर्वाधिक व्यापक पारंपरिक प्रणालियों में गिने जाते हैं। नाड़ी छोटे तालाब होते हैं, जबकि टोबा नाड़ी से मिलती-जुलती किंतु अधिक गहरी संरचना है, जिसका निर्माण सघन एवं कम रिसाव वाली भूमि पर किया जाता है। टोबा के आसपास बनी रहने वाली नमी से प्राकृतिक घास उग आती है, जो पशुओं के चारे का स्रोत बनती है–इस प्रकार एक ही संरचना जल-संचयन और चारागाह, दोनों प्रयोजन पूरे करती है।

खड़ीन: जैसलमेर की पालीवाल परंपरा

खड़ीन, जिसे धोरा भी कहा जाता है, पंद्रहवीं शताब्दी में जैसलमेर के पालीवाल ब्राह्मणों द्वारा विकसित एक अत्यंत मौलिक कृषि-जल तकनीक है। ढाल युक्त भूमि के निचले सिरे पर सौ से तीन सौ मीटर तक लंबा मिट्टी का पाल (तटबंध) बनाकर वर्षाजल के बहाव को रोका जाता तथा अतिरिक्त जल की निकासी हेतु सिद्ध-पाल अथवा फाटक की व्यवस्था की जाती थी। उस काल में राजा द्वारा पालीवाल ब्राह्मणों को भूमि खड़ीन-निर्माण हेतु प्रदान की जाती थी, और उपजी फसल का चतुर्थांश राजस्व के रूप में राजकोष में जमा होता था। पालीवालों ने अपने चौरासी गाँवों–कुलधरा, खाभा, मंडाई आदि–में तालाब, बावड़ी, मंदिर और छतरियों का ऐसा सघन जाल बिछाया कि उनकी समृद्धि की गाथाएँ दूर-दूर तक प्रसिद्ध हुईं। कालांतर में पालीवालों के पलायन के साथ यह कौशल भी उपेक्षित होता गया, यद्यपि आधुनिक अध्ययन यह प्रमाणित करते हैं कि आज भी खड़ीन-युक्त किसानों की आर्थिक स्थिति खड़ीन-रहित किसानों की तुलना में उल्लेखनीय रूप से बेहतर है।

यह ध्यातव्य है कि इनमें से प्रत्येक संरचना केवल भौतिक निर्माण नहीं थी; प्रत्येक के निर्माण, रखरखाव और उपयोग से जुड़े सामाजिक नियम, वर्जनाएँ और कथाएँ विकसित हुईं, जो मौखिक परंपरा के माध्यम से आगे बढ़ती रहीं–और यही लोक साहित्य का वास्तविक क्षेत्र है, जिस पर अब विस्तार से दृष्टिपात आवश्यक है।

लोकगीतों में जल-संरक्षण की चेतना

पणिहारी गीत: श्रम, गरिमा और प्रतीक्षा का आख्यान

राजस्थानी लोकगीत-परंपरा में पणिहारी गीत का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। पणिहारी अर्थात् जल भरने वाली स्त्री–मरुस्थल में प्रायः स्त्रियाँ मीलों दूर स्थित कुएँ अथवा बावड़ी तक जाकर पानी लाती थीं, और इसी दैनिक श्रम-यात्रा के इर्द-गिर्द एक संपूर्ण गीत-परंपरा विकसित हुई। इन गीतों की विशेषता यह है कि इनमें केवल जल लाने के भौतिक कष्ट का वर्णन नहीं मिलता, अपितु स्त्री के पातिव्रत्य धर्म, उसकी दृढ़ता और सामाजिक गरिमा का चित्रण भी होता है। सामान्यतः इन गीतों में कोई पथिक अथवा राहगीर पणिहारी को लुभाने का प्रयास करता है, किंतु वह अपने संकल्प पर अडिग रहती है। इस प्रकार पणिहारी गीत मरुभूमि में जल के दुर्लभ होने और स्त्री-श्रम के महत्व–दोनों को एक साथ मूर्त करते हैं।

इंडोणी और कांगसियो: वस्तु-केंद्रित लोक-स्मृति

पानी से भरा घड़ा सिर पर उठाने हेतु प्रयुक्त होने वाली गोल गद्दी को इंडोणी कहा जाता है, और इसी नाम पर आधारित इंडोणी गीत महिलाओं द्वारा जल भरते समय गाया जाता रहा है। इसी

प्रकार पश्चिमी राजस्थान में प्रचलित कांगसियो गीत में पणिहारी की कंघी के खो जाने के प्रसंग के माध्यम से स्नेह और विरह के भाव व्यक्त होते हैं। यद्यपि ये गीत मूलतः शृंगारिक अथवा सामाजिक प्रसंगों से जुड़े हैं, किंतु इनका परिवेश–घड़ा, कुआं, पनघट, इंडोणी–यह प्रमाणित करता है कि जल–प्राप्ति की दैनंदिन गतिविधि किस प्रकार संपूर्ण लोक–सांस्कृतिक कल्पना का केंद्र–बिंदु बनी रही।

मरुस्थलीय जीवन और गीत–संवेदना

पश्चिमी राजस्थान के मरु–अंचलों में जल की न्यूनता, दीर्घ यात्राएँ, पशुपालन–आधारित जीवन–शैली तथा कठोर जलवायु ने संपूर्ण लोकगीत–परंपरा को गहराई से प्रभावित किया है। यही कारण है कि अनेक राजस्थानी लोकगीतों में पानी, पनघट, ऊँट, यात्रा, विरह और दूर बसे प्रियजन जैसे बिंब बार–बार आते हैं। जल की खोज में की जाने वाली यात्रा और प्रिय के वियोग की पीड़ा–ये दोनों भाव प्रायः एक ही गीत में गुंथे मिलते हैं, जो यह दर्शाता है कि मरुभूमि के निवासियों के लिए जल–प्राप्ति और भावनात्मक जीवन परस्पर अभिन्न रूप से जुड़े रहे।

लोककथाओं, मिथकों और लोकदेवताओं में जल

उत्पत्ति–मिथक: वाणगंगा और भीम गदा

राजस्थान के अनेक जल–स्रोतों की उत्पत्ति महाभारत–कालीन आख्यानों से जोड़ी जाती है। अलवर जिले के विराटनगर क्षेत्र में स्थित वाणगंगा की उत्पत्ति अर्जुन द्वारा भूमि पर तीर मारने से, तथा निकट ही स्थित भीम गदा नामक जलस्रोत की उत्पत्ति भीम द्वारा अपना पैर भूमि में गड़ाकर जल–फव्वारा निकालने से जोड़ी जाती है। ऐसी कथाएँ केवल मनोरंजक आख्यान नहीं, अपितु जल–स्रोतों को दैवीय आभा प्रदान कर उनके प्रति समाज में श्रद्धा और संरक्षण–भाव उत्पन्न करने का एक सांस्कृतिक उपाय भी थीं। मरुस्थल में जहाँ जल इतनी दुर्लभ वस्तु है, वहाँ लगभग प्रत्येक प्राकृतिक जल–स्रोत के साथ कोई–न–कोई पूजा–परंपरा जुड़ गई, और अनेक स्थल कालांतर में तीर्थ का रूप धारण कर गए।

लोकदेवताओं की गाथाओं में जल–चेतना

राजस्थान के पंच पीर–रामदेवजी, गोगाजी, पाबूजी, हड़बूजी और मेहाजी–के प्रति लोकआस्था प्रदेश के जन–जीवन में गहराई से रची–बसी है, और इनसे संबद्ध अनेक गाथाओं में जल–संरक्षण का संदेश अंतर्निहित मिलता है। रामदेवजी से संबद्ध जनश्रुति के अनुसार उन्होंने अपने चमत्कार से परचा बावड़ी का निर्माण किया–एक ऐसी कथा जो दैवीय शक्ति और जल–संरचना के निर्माण को एक साथ जोड़ती है। इसी प्रकार वीर तेजाजी से संबंधित लोककथाओं में गाँवों के निकट पाल (तालाब के तटबंध) और नाड़ी बनाने पर बल दिया गया मिलता है, साथ ही जल–स्रोतों के आसपास स्वच्छता बनाए रखने का स्पष्ट संदेश भी। इन कथाओं में तालाब के जल को दूषित करना महापाप के समतुल्य माना गया–यह निर्देश किसी प्रशासनिक नियम से नहीं, अपितु धार्मिक आस्था और लोकगाथा के माध्यम से समाज में प्रतिष्ठापित हुआ, और इसीलिए पीढ़ी–दर–पीढ़ी अधिक प्रभावी ढंग से पालित भी हुआ। गोगाजी, जिन्हें जाहरपीर के नाम से भी जाना जाता है और जो हिंदू–मुस्लिम दोनों समुदायों में समान श्रद्धा के पात्र रहे हैं, से जुड़ी गाथाओं में भी गोपालन और जल–स्रोतों की रक्षा का भाव केंद्रीय है।

यह ध्यातव्य है कि जल–संरक्षण के व्यावहारिक निर्देशों को धार्मिक आस्था और लोकदेवताओं की गाथाओं से जोड़ना मरु–समाज की एक विशिष्ट सांस्कृतिक रणनीति थी। जहाँ प्रशासनिक कानून का पालन शिथिल पड़ सकता है, वहाँ आस्था–आधारित वर्जनाएँ कहीं अधिक स्थायी और प्रभावी सिद्ध होती हैं–और राजस्थानी लोक साहित्य ने ठीक इसी सिद्धांत का उपयोग करते हुए जल–संरक्षण को धर्म और नैतिकता के धरातल पर स्थापित किया।

कहावतों और लोकोक्तियों में संचित जल-ज्ञान

राजस्थानी लोकोक्तियाँ अपनी संक्षिप्तता में गहन व्यावहारिक ज्ञान समेटे रहती हैं। पूर्वोल्लिखित "घी ढूले म्हारो की नी जासी, पानी ढूले म्हारो जी बे" के अतिरिक्त मौसम और वर्षा के पूर्वानुमान से संबंधित अनेक लोकोक्तियाँ भी प्रचलन में रही हैं, जो पक्षियों के व्यवहार अथवा आकाश की स्थिति के अवलोकन पर आधारित होती थीं। ऐसी कहावतें कृषक और पशुपालक समाज को वर्षा की संभावना का पूर्व-आभास देकर जल-संचयन की तैयारी हेतु सचेत करती थीं। यह लोकोक्ति-परंपरा वस्तुतः पीढ़ियों के अनुभवजन्य निरीक्षण का सारसंक्षेप है, जिसे सरल, स्मरणीय और लयबद्ध भाषा में ढालकर मौखिक रूप से हस्तांतरित किया जाता रहा।

लोक साहित्य के संकलनकर्ता और शोधकर्ता

राजस्थानी लोक साहित्य के व्यवस्थित संकलन और शोध का श्रेय बहुत बड़ी सीमा तक विजयदान देथा तथा कोमल कोठारी जैसे विद्वानों को जाता है, जिन्होंने 1960 में बोरुंदा (जोधपुर) में रूपायन संस्थान की स्थापना कर राजस्थानी लोकगीतों, लोककथाओं और लोकोक्तियों के वैज्ञानिक संकलन को संस्थागत रूप दिया। देथा द्वारा संपादित बहुखंडीय "बातां री फुलवाड़ी" राजस्थानी लोककथाओं का एक अप्रतिम संग्रह है, जिसमें जल, मरुभूमि और ग्राम्य-जीवन से जुड़ी अनेक कथाएँ संकलित हैं। इसी प्रकार पर्यावरणविद् एवं लेखक अनुपम मिश्र का योगदान इस क्षेत्र में असाधारण महत्व रखता है। उनकी कृतियाँ "आज भी खरे हैं तालाब" तथा विशेष रूप से "राजस्थान की रजत बूंदें" भारत की पारंपरिक जल-संचयन प्रणालियों, उनसे जुड़े लोकाचार और सामाजिक संरचनाओं का सुव्यवस्थित एवं गहन शोधपरक दस्तावेजीकरण प्रस्तुत करती हैं। मिश्र का यह लेखन इस तथ्य को रेखांकित करता है कि राजस्थान की जल-परंपरा केवल तकनीकी संरचना नहीं, अपितु एक संपूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक तंत्र थी, जिसमें स्वामित्व, रखरखाव, धार्मिक आस्था और सामूहिक अनुशासन के नियम परस्पर गुंथे हुए थे। इन विद्वानों के कार्य ने मौखिक लोक-ज्ञान को लिखित एवं शोधगम्य रूप प्रदान कर भावी पीढ़ियों के लिए इसे सुरक्षित किया है।

समकालीन प्रासंगिकता: परंपरा से प्रेरित पुनर्जागरण

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब आधुनिक विकास और भूजल के अनियंत्रित दोहन ने राजस्थान के अनेक अंचलों को गंभीर जल संकट की ओर धकेल दिया, तब यही लोक-स्मृति में सुरक्षित पारंपरिक ज्ञान पुनरुत्थान का आधार बना। अलवर जिले में 1975 में स्थापित तरुण भारत संघ के माध्यम से राजेंद्र सिंह—जिन्हें आज विश्व भर में "जल पुरुष" के नाम से जाना जाता है—ने 1980 के दशक से स्थानीय ग्रामीणों के साथ मिलकर परंपरागत जोहड़ों के पुनर्निर्माण का जो अभियान आरंभ किया, वह वस्तुतः लोक-स्मृति में संचित ज्ञान के आधुनिक पुनर्प्रयोग का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस अभियान के परिणामस्वरूप हजारों जोहड़ों का पुनर्निर्माण हुआ और सैकड़ों गाँवों में भूजल स्तर तथा जल उपलब्धता में उल्लेखनीय सुधार दर्ज किया गया। राजेंद्र सिंह के इस कार्य को 2001 में रैमन मैग्सेसे पुरस्कार तथा 2015 में स्टॉकहोम जल पुरस्कार—जिसे जल के क्षेत्र का सर्वोच्च अंतरराष्ट्रीय सम्मान माना जाता है—से अलंकृत किया गया। यह तथ्य इस बात का प्रबल प्रमाण है कि राजस्थानी लोक-ज्ञान, जो शताब्दियों तक गीतों, कथाओं और लोकोक्तियों में मौखिक रूप से सुरक्षित रहा, आज वैश्विक स्तर पर सतत विकास और जल प्रबंधन के लिए एक प्रामाणिक मॉडल के रूप में स्वीकृत हो चुका है।

यह पुनर्जागरण इस निष्कर्ष की पुष्टि करता है कि लोक साहित्य कोई अप्रासंगिक अथवा केवल नॉस्टेल्जिया-जनित सांस्कृतिक अवशेष नहीं, अपितु एक जीवंत ज्ञान-प्रणाली है, जिसका समुचित अध्ययन और अनुप्रयोग समकालीन पारिस्थितिक चुनौतियों के समाधान में निर्णायक भूमिका निभा सकता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि राजस्थानी लोक साहित्य–चाहे वह पणिहारी और इंडोणी जैसे लोकगीत हों, गोगाजी-तेजाजी-रामदेवजी जैसे लोकदेवताओं की गाथाएँ हों, वाणगंगा जैसे उत्पत्ति-मिथक हों अथवा संक्षिप्त किंतु सारगर्भित लोकोक्तियाँ–जल के प्रति एक समग्र, बहुआयामी और गहन पारिस्थितिक चेतना का वाहक रहा है। यह साहित्य मरुभूमि के निवासियों के अनुभवजन्य ज्ञान, सामाजिक अनुशासन और आध्यात्मिक आस्था का ऐसा संश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसने सदियों तक अत्यंत विषम भौगोलिक परिस्थितियों में भी जीवन को संभव बनाए रखा। आज जब संपूर्ण विश्व जलवायु परिवर्तन और जल संकट की गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहा है, राजस्थानी लोक साहित्य में निहित यह ज्ञान-परंपरा केवल सांस्कृतिक धरोहर के रूप में संरक्षणीय नहीं, अपितु नीति-निर्माण, पर्यावरण-शिक्षा और सामुदायिक जल-प्रबंधन के व्यावहारिक स्तर पर भी अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध हो सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि लोक साहित्य के व्यवस्थित संकलन, अनुसंधान और शिक्षा-पाठ्यक्रम में समावेशन हेतु ठोस प्रयास किए जाएँ, जिससे यह अमूल्य मौखिक विरासत आने वाली पीढ़ियों तक सुरक्षित पहुँच सके।

संदर्भ सूची

1. मिश्र, अनुपम. *आज भी खरे हैं तालाब*. नई दिल्ली: गांधी शांति प्रतिष्ठान.
2. मिश्र, अनुपम. *राजस्थान की रजत बूंदें*. नई दिल्ली: गांधी शांति प्रतिष्ठान.
3. देथा, विजयदान. *बातां री फुलवाड़ी* (14 खंड). बोरुंदा: रूपायन संस्थान.
4. कोठारी, कोमल एवं देथा, विजयदान (संपा.). *राजस्थानी लोक गीत* (छह भाग), 1958.
5. इंडिया वाटर पोर्टल हिंदी. "राजस्थान में जल संरक्षण की परम्परागत विधियाँ." hindi.indiawaterportal.org
6. डाउन टू अर्थ हिंदी. "...और खड़ीन को खोता गया समाज." hindi.downtoearth.org.in
7. मोंगाबे हिंदी. "खड़ीन: राजस्थान में जल संग्रह की परंपरागत तकनीक से लहलहाती फसलें." hindi.mongabay.com
8. राज आरएएस. "राजस्थान के प्रमुख लोक गीत" एवं "राजस्थान में परंपरागत जल प्रबंधन." hindi.rajras.in
9. पत्रिका डॉट कॉम. "लोकदेवताओं की गाथाओं में छुपा जल संकट का पक्का इलाज." patrika.com
10. विकिपीडिया हिंदी. "राजेन्द्र सिंह," "विजयदान देथा," "अनुपम मिश्र," "राजस्थान की लोकोक्तियाँ एवं कहावतें"